स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का समग्र अध्ययन

प्रमोद कुमार पाल

सहायक प्रवक्ता (बी०एड०)
रघुवीर महाविद्यालय, थलोई,
जौनपुर

स्वामी जी ने शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है और भारत की निर्धनता एवं पतन का कारण एक मात्र अशिक्षा को बताया है। यूरोप के अनेक नगरो का भ्रमण करते हुये उन्हें शिक्षा की भौतिक उपलब्धियॉ भी दिखाई पड़ी। स्वामी जी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से दुःखी थे। उनका विचार था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य का वास्तविक विकास नही करती थी। वह शिक्षा को मात्र सूचना तक नही सीमित करना चाहते थे तमाम असम्बद्ध जानकारियों को एक गठरी में ठसू लेने से कोई लाभ नही सूचना का अपने आप में कोई महत्व नहीं, जो विचार जीवन निर्माण में सहायक हो उनकी अनुभूति करना आवश्यक है। स्वामी जी के अनुसार केवल कुछ विचारों को रटकर डिग्री प्राप्त कर लेना शिक्षा नही है।

आधुनिक शिक्षा तथा पुर्नजागरण के आन्दालनों के वैज्ञानिक क्षेत्र में आधुनिकता का अवतरण हुआ। आधुनिक शिक्षा तथा पुर्नजागरण के आन्दोलन प्रवृत्तिपरक थे। अतः पुनः भारतीय शिखा के मूल स्वरूप का विकास प्रारम्भ हुआ।

उत्तर भारत में पुर्नजागरण के आन्दोलन का नेतृत्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया। परोक्षदर्शी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने मन्तव्यों से प्रत्येक भारतीय को ही प्रभावित नहीं किया, अपितु भारतीय शिक्षा को भी तर्कनिष्ठ बनाया।

शिक्षा का अभिप्राय

स्वामी जी के अनुसार बालक का जब जन्म होता है तब वह आध्यात्मिक एवं भौतिक दृष्टि से दोनो ही अन्तःकरण में किसी न किसी स्थान पर अव्यवस्थित सा बिखरा रहता है। जब किसी विशेष अवसर पर यह अव्यवस्थित और बिखरा हुआ ज्ञान आवरण हटने के साथ–साथ प्रकाशित होने लगता है तब हम यह कहते है कि मनुष्य ज्ञानी है। ज्ञान सदैव मनुष्य के मन में निहित है। स्वामी जी शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में रूसों से सहमत थे। जिस प्रकार पौधा प्रकृति के अनुसार बढ़ता है, उसी प्रकार बालक भी स्वयं पूर्णता को प्राप्त करता है बशर्ते कि एक माली की भांति वह स्वयं ही देखभाल चाहता है। व्यक्ति में ज्ञान स्वतः निहित है। ज्ञान बाहर से नही आता वह तो अन्दर ही है। बालक को अपने अन्दर निहित ज्ञान का

अन्वेषण करता है। मन में ही सारा ज्ञान निहित है, बाहरी संसार सुझाव या प्रेरणा मात्र देता है तब व्यक्ति अपने मन का ही अध्ययन करने के लिये प्रेरित होता है।

स्वामी जी के अनुसार विभिन्न उपाधियों को एकत्रित करके मात्र दूसरों के विचारों को सैद्धान्तिक तौर पर रटकर कोई व्यक्ति अपने को शिक्षित नहीं कहला सकता है। क्या यही शिक्षा है जो मनुष्य को जीवन संग्राम के लिये तैयार नही करती, उनके चरित्र के विकास में सहयोग नही देती, उनमें प्रेम, दया आदि की भावना का समावेश नहीं करती, वह शिक्षा नही कही जा सकती। उन्होने शिक्षा का व्यापक एवं व्यावहारिक अर्थ लिया शिक्षा को एक ऐसा ज्ञान माना है जिससे व्यक्ति को अपना शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास करने में सहयोग मिलता है।

निश्चित रूप से उनका प्रयोजन उसी शिक्षा से था जिसके द्वारा विकास हो और साथ ही साथ मनुष्य स्वावलम्बी हो। आवश्यकता इस बात की है कि सम्पूर्ण शिक्षा की आधारशिला को रखते हुये उसके पीछे मानव की पूर्णता उसकी उन्नति का भाव रखना चाहिये। इस संदर्भ में शिक्षा ज्ञानार्जन है लेकिन अर्थ एवं अपरिपक्वता से युक्त नहीं। बल्कि जीवन में उपयोगी, मनुष्य का निर्माण करने वाली तथा विचारों का आत्मसात करने वाली। इस प्रकार स्वामी जी के अनुसार शिक्षा ज्ञान का संग्रह मात्र न होकर विकास हेतु ज्ञान का सदुपयोग है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा मानव में पहले से ही उपस्थिति पूर्णता की अभिव्यक्ति है। उन्होने स्पष्ट शब्दों के अर्थ को परिभाषित किया– ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।''

स्वामी जी के अनुसार– ''भले ही एक व्यक्ति छोटा सा बुलबुला हो और दूसरा पर्वत के समान ऊॅची तरंग, पर बुलबुला और तरंग दोनों के पीछे वही अनन्त सागर है। वही अनन्त सागर सबका आधार है जैसा मेरा, वैसा ही तुम्हारा भी। अतः अपनी संतानों को उनके जन्मकाल से ही इस महान् जीवनप्रद उच्च और उत्तम तत्व की शिक्षा देना शुरू कर देना चाहिये निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रशिक्षण से मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रकाश फलदायी हो, उसकी अर्न्तनिहित पर्णता की अभिव्यक्ति हो वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है। स्वामी जी ने इसी प्रकार के प्रशिक्षण को ही शिक्षा माना है।

शिक्षा का उद्देश्य

स्वामी जी आदर्शवादी विचारक थे, चूंकि जीवन का आदर्श दर्शन होता है इसलिये उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव है लेकिन उन्होने प्रकृति और यर्थाथ को नही ठुकराया। मन में समस्त झुकाओं और सभी प्रकार की प्रकृतियों का समन्वय चरित्र है। सुख–दुख व्यक्ति की आत्मा पर अपनी छाप छोड़ जाते है। इस सभी प्रकार की छापों का समष्टि चरित्र है। विचारों से ही मनुष्य बनता है। अच्छे शब्द सुनने वाला, अच्छे विचार सोचने वाला, अच्छे संस्कार से युक्त होता है और इच्छा न होते हुये भी सत्कार्य करने

के लिये विवश हो जाता है। जब व्यक्ति संस्कारवश अच्छे कार्य करता है तभी उसका चरित्र गठित हो जाता है यही चरित्र गठन शिक्षा का उद्देश्य है।

चरित्र गठन के लिये महान कार्यो का ही महत्व नही है बल्कि बहुत छोटे छोटे कार्यो का भी महत्व है। अतः चरित्र गठन अच्छा तब कहा जायेगा। जब व्यक्ति सदा सभी दशाओं में महान् कार्य करता रहता है मन पर पड़े संस्कार आदत के रूप में परिणत हो जाता है। बुरी आदत को उसी विरोधी आदत द्वारा सुधारा भी जा सकता है। सदा अच्छे कार्य करने से, पवित्र विचार करने से, बुरी आदतों को वश मे किया जा सकता है। बार–बार अभ्यास करने से चरित्र का गठन और पुर्नगठन किया जा सकता है। हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि हमारी इच्छाशक्ति सबल बने और उसके माध्यम से चरित्र का उन्नयन किया जा सके।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, हमारी शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना होना चाहिये सारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस प्रशिक्षण से मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रकाश कर पायी हो, वही शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना ही नही होना चाहिये।

विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण उ्देश्य है श्रद्धा की निष्पत्ति। स्वामी जी श्रद्धा को बहुत महत्व देते है और भारतीय शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा के अभाव से वे दुःखी थे। उनके मतानुसार श्रद्धा से समस्तजगत क्रियाशील हातेा है और श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य के जीवन को समृद्धिशाली बनाया जा सकता है। आत्मज्ञान द्वारा मनुष्य में श्रद्धा उत्पन्न होती है। आत्म ज्ञान से तात्पर्य बो आडम्बर में पूर्ण जीवन बिताना नहीं है। स्वामी जी द्वारा निर्धारित शिक्षा का पहला उद्दश्े य यह है कि शिक्षा मनुष्य के अन्दर विद्यमान पूर्णता को प्रकट कर उसे समझने में सहायता देती है। अर्थात् शिक्षा आत्मा परमात्मा इन दोनो में आपसी तारतम्य को स्थापित करने में सहयोग देती है। शिक्षा का दूसरा उद्देश्य मानव एवं समाज सेवा है। वे अवगुणों को निरर्थक समझते है, वे गुणों के अभ्यास के लिये समाज व प्राणी की सेवा को ही सर्वोत्तम समझते है, क्योंकि प्राणी ब्रह्ममय अंश है तथा यर्थाथ शिक्षा का लक्ष्य इन्होंने मानव की सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना माना है। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु उन्होने कहा कि दरिद्र नारायण की सेवा ही सच्ची वास्तविक सेवा है उन्होंने शिक्षा के सामाजिक लक्ष्य की ओर इ ित करते हुये स्पष्ट किया कि वास्तव में व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई योग्यता एवं दिव्यता का प्रकाशन समाज में ही संभव होता है।

शिक्षा का तीसरा उद्देश्य उन्होने मानव निर्माण तथा समाजसेवा के साथ ही साथ धर्म शिक्षा का लक्ष्य कहा है। व्यक्ति में मनुष्यत्व को लाना धर्म का ही कार्य है क्योंकि मनुष्य जब जन्म लेता है तो वह पशु तुल्य होता है, धर्म ही उसे पशुत्व से अलग करता है। धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है। स्वामी जी का विचार था कि व्यक्ति को लौकिक एवं अलौकिक

सद्गुणों को धारण करके ही दिव्य पुरूष की श्रेणी मिलती है। ये सद्गुण है– आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मत्याग, आत्म निर्भरता मानवप्रेम आदि। इन्ही सद्गुणों को प्राप्त करने के लिये स्वामी जी ने कहा, उठो जागों और जब तक चरम लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाये, तब तक लगे रहो इसके परिणमस्वरूप मनुष्य की प्राप्ति से भौतिक सुखों के साथ आध्यात्मिक आनन्द की भी तृप्ति महसूस करता है इस प्रकार स्वामी जी शिक्षा के इस लक्ष्य को निर्धारित कर व्यक्ति का धार्मिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास चाहते थे।

शिक्षा का चौथा लक्ष्य उन्होने बताया कि व्यक्ति को सदैव वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से प्रेरित रहना चाहिये। उन्होने स्पष्ट किया कि सभी प्राणी समान रूप से पारस्परिक सभ्यता व संस्कृति का आदान–प्रदान करें व विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करें।

पाठ्यक्रम

स्वामी जी अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें निषेधात्मकता न हो। छात्रों के समझ विधात्यमक या भावात्मक विचार रखने चाहिये न कि अभावात्मक या निषाधात्मक देश को सफल एवं उन्नत बनाने के लिये जिन–जिन विषयों को पढ़ा ने की आवश्यकता होवे विषय अवश्य पढाये जाये। वेदों को उन्होने अपनी शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान दिया। अतः वेदों का अध्ययन भी पाट्यक्रम के अन्तर्गत रखा और वैदिक मंत्रों की मेघ गर्जना द्वारा भारत में प्राणों का संचार करने को कहा।

संगीत शिक्षा के साथ–साथ स्वामी जी ने पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा देने की बात कहीं। उन्होने कहा कि धार्मिक शिक्षा भी देनी है किन्तु आडम्बर से दूर रहना है मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर को स्वामी जी खिलवाड़ समझते थे। धर्म का क्रियात्मक अनुभव होना आवश्यक है केवल बौद्धिक प्रशिक्षण से छात्रों में मनुष्यता के गुणों का प्रादुर्भाव नही होता है। पाठ्यक्रम में सत्य का समावेश होना चाहिये। सत्य आत्मा का स्वभाव है। शरीर, बुद्धि या आत्मा को कमजोर बनाने वाला तत्व सत्य नही होता सत्य में जीवन शक्ति होती है, वह बलप्रद पवित्र और ज्ञान स्वरूप होता है।

स्वामी जी ने उपनिषदों को भी जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना है। उपनिषद् शक्ति की विशाल खान है उनमें ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी कर सकते है। उनके द्वारा समस्त संसार पुर्नजीवित कर शक्ति और वीर्य सम्पन्न हो सकता है। पाठ्यक्रम में शारीरिक प्रशिक्षण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शारीरिक दुर्बलता, हमारे दुःखों का महत्वपूर्ण कारण है। इसके कारण हम आलसी बन जाते है। नवयुवकों को बलवान बनाने के लिये शिक्षा में शारीरिक प्रशिक्षण आवश्यक है खेलकूल का भी अंग महत्वपर्णू है।

स्वामी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक दोनो जीवनों के लिये तैयार करना चाहते थे। उनके द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम को इस प्रकार से भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. लौकिक 2. आध्यात्मिक

लौकिक विषय जहाँ व्यक्ति को भौतिकता की ओर ले जाते है, वहीं आध्यात्मिक विषय आत्मानुभूति की पराकाष्ठा तक पहुँचाते है। स्वामी जी के अनुसार पाठ्यक्रम सदैव परिवर्तनशील होना चहिये पाठ्यक्रम में विद्यार्थी की आवश्यकता का अध्ययन रखना चाहिये तद्नुसार शिक्षा में परिवर्तन होना चाहिये। पाठ्यक्रम ऐसा हो जो बालक को सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहे, किन्तु पाठ्यक्रम को सदा उच्च नैतिकता एवं उदात्त आदर्शो से युक्त होना ही चाहिये।

स्वामी जी ने नैतिक शिक्षा का भी समर्थन किया है। वे नैतिकता को दैवीय आवश्यकता पर आधारित करते है। उनके अनुसार ईश्वर माध्यम के रूप में है। संकल्प की स्वतंत्रता के वे समर्थक है। साधन और साध्य का जहां तक प्रश्न है वे कहते है ''हमारे साधन उतने ही महान होने चाहिये जैसे कि हमारे साध्य महान है और साध्य को प्राप्त करने के लिये साधन का पता लगाने और प्रयोग करने की शक्ति स्वयं हमारे अन्दर शक्ति के शाश्वत स्रोत की खोज करने से पाई जा सकती है''।

शिक्षण विधि

स्वामी जी ने शिक्षा की जो शिक्षण विधियाँ निर्धारित की है वे स्वयं में वैशिष्टता लिये हुये है उनकी शिक्षण विधि धर्म से भी ओत–प्रोत है व आध्यात्मिकता का रूप धारण किये हुये है। उनकी शिक्षण विधि चित्त की इच्छाओं का हनन करके मस्तिष्क को स्वीकृत करके शिक्षण देने पर बल देती है। उन्होने योगों के माध्यम से चित्त की प्रकृतियों को एकाग्र करने पर बल दिया है। मनुष्य का मन एकाग्र होने पर भी भ्रमित हो जाता है तथा निश्चित वस्तु को ग्रहण करने में अक्षम साबित होता है। एकाग्रता ही शिक्षण हो सकता है किसी अन्य विधि द्वारा नही।

शैक्षणिक उपलब्धियाँ एकाग्रता की मात्रा पर निर्भर है एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी ज्ञान प्राप्ति की सीमा उतनी ही अधिक होगी। एकाग्रचित होकर चर्मकार जूता अच्छा बनाता है, रसोइया भाजे न अच्छा बनायेगा, अर्थोपार्जक पैसा अधिक कमायेगा, ईश्वरोपासक अराधना अधिक करेगा। ठीक उसी प्रकार यदि अध्यापक एकाग्रचित है तो अच्छा ज्ञान देगा विद्यार्थी एकाग्रचित है तो अच्छा श्रवण

करके ज्ञानार्जन करेगा मनुष्य और पशु में भेद ही एकाग्रता को लेकर है।

स्वामी जी ने शिक्षण विधियो में मुख्यतः केन्द्रीकरण को महत्व दिया है। इसमें व्यक्ति को स्वयं को एकाग्रचित करना पड़ता है क्योकि मन की चंचलता दूर करके एकाग्र होना शिक्षा का महत्वपूर्ण तत्व ग्रहण करने की एक विधि है। उन्होने कुछ अन्य शिक्षण विधियों की ओर भी

दृष्टिपात किया है जैसे भ्रमण क्रिया, साधु संगति आदि। स्वामी जी ने तो यहॉ तक कह दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति का गाँव–गाँव में
जाकर विद्या का दान करना चाहिये।

क्रिया एवं व्यवहारिक विधियों का भी उन्होने पूर्णरूपेण समर्थन किया है इसके साथ ही साथ उपदेश विधि को भी महत्वपर्ण बताया है जो वर्तमान समय में व्याख्यान विधि है। वह इस विधि का ही रूपान्तर मात्र है इसमें किसी विषय पर विचार विमर्श, तर्क वितर्क, समाधान तथा शास्त्रीय तर्को द्वारा सत्यों व रहस्यों की जानकारी होती है। अनुकरण विधि की ओर भी उन्होने पर्याप्त ध्यान दिया है उन्होने
अनुकरण विधि को स्पष्ट करते हुये कहा कि ''छात्र बाल्यकाल से ही ऐसे गुरू के साथ रहे जिसका चरित्र देदीप्यमान हो और छात्र के सामने उच्च त्याग का उदाहरण हो क्योकि छात्र अनुकरण के माध्यम से ज्ञानार्जन करता है।''

स्वामी जी के शैक्षिक विचारों में एक और शिक्षण विधि का उल्लेख आता है और वह है– व्यक्तिगत निर्देश एवं परामर्श की विधि। इस विधि द्वारा मात्रात्मक समूहों में एकत्रित होकर व्यक्तिगत समस्याओं पर विचार किया जाता है। वर्तमान समय में इसका विस्तृत रूप भी दिखायी देता है।

सीखने में स्वाभाविकता का महत्व है। अतः बालक के मस्तिष्क में ज्ञान को ठूंसना नही चाहिये। बालक को सिंह बनने दीजिये, उसे बहुत अधिक परतंत्र मत बनाये। बालक को सुधारने का या सिखाने का दम्भ व्यर्थ है उसे स्वाधीन करिये और उसे स्वयं सीखने के लिये प्रेरित करिये। स्वामी जी के शब्दों में, ''तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हो जैसे कि पौधे को बढ़ाने में। तुम केवल बाधाओं को हटा सकते हो और बस ज्ञान अपने स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जायेगा। जमीन को कुछ पोली बना दो ताकि उसमें ये उगना आसान हो जाये उसके चारों ओर घेरा बना दो और देखते रहो कि कोई उसको नष्ट न करें ऐसा ही बालक की शिक्षा के बारे में है। बालक स्वयं अपने आपको शिक्षण देता है। शिक्षण की यह विधि भी महत्वपूर्ण है।

स्वामी जी द्वारा समर्थित शिक्षण विधि में पुस्तकीय शिक्षण की प्रधानता नही है। खेल पुस्तकों के अध्ययन को वे शिक्षा मानने को तैयार नही थें उनके अनुसार पुस्तकों का अध्ययन किया जाय पर इस प्रकार नहीं जिस प्रकार आजकल किया जा रहा है। पुस्तकों को पढ़ने से यदि एकाग्रता विकसित होती, श्रद्धा का विकास यदि नही होता और छात्रों में आत्मविश्वास यदि जाग्रत नही होता तो उन्हें पढ़ाना व्यर्थ है।
शिक्षा का माध्यम

शिक्षा का माध्यम एक ऐसी समस्या है जो आज एक विकराल रूप धारण करती जा रही है। वैदिक युग में शिक्षा का माध्यम संस्कृत थी। शनैः शनैः इसमें परिवर्तन आया और एक ऐसा समय आया जबकि ब्रिटिश शासन ने संस्कृत के अस्तित्व को समाप्त कर शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी को बना दिया। अँग्रेजों ने प्राचीन शिक्षा प्रणाली को धराशायी कर दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने द्वारा निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बताया। उनके अनुसार शिक्षा मातृभाषा द्वारा प्रदान की जाय' शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को स्वीकार करते हुये उन्होने कहा–

''विदेशी भाषा की अपेक्षा स्वदेशी भाषा पर पहले अधिकार करना चाहिये क्योंकि स्वदेशी भाषा का अपन` में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। मातृभाषा पर अधिकार कर लेने के बाद विदेशी भाषा का अध्ययन हो सकता है लेकिन विदेशी भाषा शिक्षा का माध्यम नही हो सकती है। उन्होने शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को स्वीकार किया। उन्होंने कहा–

''मै समस्त शास्त्र ग्रन्थों को भारत के प्रत्येक मनुष्य की सार्वजनिक सम्पत्ति बना देता चाहता हूँ। चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं और यह कार्य मातृभाषा के माध्यम द्वारा सुलभ है।''

मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्रदान किये जाने पर वह सबके लिये उपयोगी और सार्थक होगी क्योंकि शिक्षा का माध्य ही वह सुदृढ़ आधारशिला है जिस पर शिक्षारूपी भव्य भवन का निर्माण हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी जी ने शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया यद्यपि उन्होने अन्य भाषाओं की अवहेलना नही की तथापि उन्हें शिक्षा के माध्यम के रूप में नही स्वीकार किया। अन्य भाषाओ को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो ऐसा इसलिये हुआ कि वह शिक्षा को सर्वसुलभ एवं जीवनोपयोगी बनाना चाहते थे और साथ ही साथ व्यक्ति को अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रेरित करना चाहते थे। उचित माध्यम द्वारा प्रदान की गयी शिक्षा स्थायी होती है।

शिक्षक

शिक्षक के महत्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया है–

''गुरू ब्रह्मा , गुरूः विष्ण, गुरूः देवो महेश्वरा,
गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मैश्री गुरूवेनमः।।

निःसंन्देह स्वामी जी ने भी शिक्षा की प्रक्रिया में गुरू की महत्ता बतलायी है। अध्यापक में उन सभी गुणां` का होना आवश्यक है जो व्यक्ति को उच्च चरित्र, उत्तम व्यक्तित्व प्रदान करते है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा 'गुरू गृह वास' है। शिक्षक अर्थात् गुरू के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नही हो सकती है शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्तिगत जीवन के

बिना कोई शिक्षा नही हो सकती है शिष्य को बाल्यवस्था से ऐसे व्यक्ति के साथ रहना पड़ता है जो पवित्र हो। शिक्षक का चरित्र अग्नि के समान प्रकाशमान हो जिसमें उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के समान रहे और उच्चतम आदर्शो की सच्ची मूर्ति होना चाहिये। उसे ज्ञान के दान के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये। ज्ञान का दान बिना त्याग के नही हो सकता। अतः उसे त्यागी भी होना चाहिये।

स्वामी जी ने शिक्षक के तीन गुण बताये है प्रथम गुण उसका शास्त्र ज्ञान है। वैसे तो सारा संसार ही, वेद, कुरान पढ़ता है, पर वे तो खेद शब्दराशि है, धर्म की सूखी ठठरी मात्र है। जो गुरू शब्दाडम्बर के चक्कर में पड़ जाते है जिनका मन शब्दों की शक्ति में बह जाता है, वे भीतर का मर्म खो बैठते है। जो शास्त्रों के वास्तविक मर्मज्ञ है वे असल में सच्चे गुरू है। अच्छा शिक्षक अवश्यमेव शास्त्रों के मर्म को जानता है, वह शब्दों के परे अर्थ को जानता है।

अनुशासन

अनुशासन का वास्तविक अर्थ अपने वास्तविक रूप में मनुष्य की आन्तरिक भावना नियंत्रण की शक्ति और सामाजिक आचरण इन सबको योग होता है। इस प्रकार अनुशासन के बारे में स्वामी जी ने कहा कि मारपीट, भय, दण्ड आदि के द्वारा बालक को अनुशासित नही करना चाहिये। उनके अनुसार अनुशासन के संदर्भ में शिक्षक को मुक्तयात्मक सिद्धान्त को मानना चाहिये। अनुशासन स्थापित करने के लिये बच्चो को पूर्ण स्वतंत्र छोड़ना चाहिये और उन्हें अपनी मूल शक्तियों, रूचियों, स्थानों और योग्यतानुसार विकास के पूर्ण अवसर देने चाहिये। उसी स्थिति में ही बच्चे सही आचरण करते है। दूसरी तरफ स्वामी जी ने यह भी कहा कि विद्यार्थी में ब्रह्मचर्य का गुण हा` तथा वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखे। उन्होने अनुशासन स्थापित करने के लिये कहा कि ब्रह्मचर्य द्वारा ही ज्ञानों ेन्द्रयों एवं कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण संभव है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने में आंशिक रूप से सफल हो जाता है। यह एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें बालक एकाग्रता की चरम सीमा पर पहुँचकर स्वयं को ब्रह्म मानने लगता है उन्होने इन्द्रियों को बेलगाम नही छोड़ा है। संयम, दान, ज्ञान, त्याग, तप, उपासना, व्रत आदि इन्द्रियों के नियंत्रण के आधार है।

धर्म–शिक्षा

धर्म–शिक्षा स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का अन्तरतम केन्द्र धर्म बताया है स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''धर्म तथ्य का प्रश्न है न कि वार्तालाप का। हम लोग अपनी आत्मा का विश्लेषण करना पसंद करते है और पता लगाते है कि वहां क्या है। हम लोग जो समझना पसन्द करते है और जो कुछ समझते है उसकी अनुभूति करते है। यही धर्म है किसी भी मात्रा में वार्तालाप करने से धर्म नही बनता है।''

धर्म यदि एक ओर अनुभूति है और गुणों की प्राप्ति है और उनका प्रयोग है तो दूसरी ओर उत्कर्ष भी है। हमारे भीतर की कुछ दुर्बलताये होती है अज्ञान एक दुर्बलता है इसके लिये हमें ज्ञानोत्कर्ष की ओर बढ़ना चाहिये और 'सत्य' का पता लगाना चाहिये जिसका मूलोद्गम् वेद, उपनिषद्, वेदान्त आदि है। दूसरी ओर शारीरिक उत्कर्ष में रूचि लेते थे तभी वे सच्चे अर्थ में धर्म का पालन कर सके। इसलिये वे सभी को उपदेश देते थे कि स्वर्ग की प्राप्ति गीता पढ़ने की अपेक्षा फुटवाल खेलने से सरलता से प्राप्त हो सकती है। इसका कारण है कि शरीर हमारे देश में धर्म का साधन है। शरीर का बल होने से आत्मा का बल भी होता है और इस प्रकार व्यक्ति सद्धर्म को करता है। शरीर को बल कैसे मिलता है इसके लिये स्वामी विवेकानन्द ने ब्रह्मचर्य को प्रमुखता दी है। इसी ब्रह्मचर्य के बल पर शरीर और मन दोनो बलवान होते है। ब्रह्मचर्य विचार और कार्य दोनो रूप में होना आवश्यक है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन और धारण करना धर्म शिक्षा के अन्तर्गत है, इसके लिये माता–पिता, गुरू और समाज उत्तरदायी है तथा व्यक्ति को स्वयं अभ्यास करने की आवश्यकता है। इससे स्पष्ट है कि विवके ानन्द के अनुसार धर्म एक तप और साधना है उसकी शिक्षा का एक क्रम भी है जो ऊपर वर्णित है। विवकेानन्द ने कहा भी है कि धर्म तो व्यक्ति में पुरूषत्व लाता है। वास्तविक रूप में धर्म धारण करने के लिये स्वामी जी का कथन है कि 'तुम क्यों विरोधों में लगते हो। विभिन्न मतों की बातों को बर्दाश्त करें। धैर्य, शुद्धता और सहनशीलता, विजयी होकर रहेंगे। वस्तुतः धर्म इन्हे ही धारण करके कार्य करने में होता है। इससे मनुष्य को बल मिलता है। असीम शक्ति धर्म है। शक्ति अच्छाई है। निर्बलता पाप है धार्मिक शिक्षा प्रत्येक बालक को चमकदार, वीर और प्रत्येक लड़की को प्रकाशयुक्त वीरनी बना दे। धर्म हरेक को निर्भय बना दे। भारत की दुर्दशा देखकर स्वामी विवेकानन्द ने धर्म शिक्षा को अनिवार्य रूप से देने के लिये कहा और यही कारण था कि उन्होने धर्म शिक्षा का प्रचार न केवल भारत में ही किया बल्कि विदेशों में भी किया और हमारे देश में ही नही बल्कि अन्यत्र भी धर्म शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता अनुभव की जा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आत्मानंद मिश्र (2003),भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक, मेरठः आर0लाल बुक डिपो।
2. गुप्ता, एस० पी० (2008) भारतीय शिक्षा का विकास तथा समस्यायें, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन।
3. चटर्जी एवं दत्त (1989) भारतीय दर्शन, पटनाः पी0वी0 प्रकाशन।
4. जौहरी व पाठक (1989) भारतीय शिक्षा का इतिहास, मद्रासः मैकमिलन इण्डिया लि0।